* द्वितीय अध्याय *

: द्वितीय अध्याय :

धर्मवीर भारती के औपन्यासिक युग की पृष्ठभूमि।

साहित्यकार अपने युग की उपज होता है। वह युग की परिस्थिति से प्रभावित होकर ही अपनी कलाकृति को जन्म देता है। प्रत्येक युग का साहित्य अपनी समसामायिक राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है, क्योंकि समाज से पृथक व्यक्ति के जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। व्यक्ति और समाज दोनों की मनोवृत्तियों अन्योन्याश्रित सम्बन्ध चिरंतन है। समाज के लिए साहित्य एक प्राणदायिनी अमोघ संजीवनी है। तो समाज साहित्य का अनवरत प्रेरणा स्त्रोत है। इसलिए देनों का संबंध अटूट होता है।

धर्मवीर भारती जी भी अपने युग से अछूते नहीं रह पाये हैं। उनके साहित्य का युग चेतनाओं से गहरा संबंध है। अतः उनके औपन्यासिक युग की पृष्ठभूमि को देखना अनिवार्य है।

डा.धर्मवीर भारती जी का जन्म, २४ दिसम्बर १९२६ में हुआ है। इनके लेखन कार्य का प्रारंभ "गुनाहों का देवता" उपन्यास से हुआ है, जिसका प्रकाशन सन "१९४९" में हुआ है। इनकी अंतिम औपन्यासिक रचना सन "१९६०" में प्रकाशित हुई है। इससे स्पष्ट होता है कि भारती जी प्रेमचंदोत्तर युग के उपन्यासकार है। भारती जी के प्रथम उपन्यास के प्रकाशन (सन १९४९) से पूर्व लगभग पचास वर्षों की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक अवस्थाएँ एवं साहित्यिक परंपराओं का प्रभाव भारती जी के उपन्यासों पर लक्षित होता है। अतः भारती जी के उपन्यासों की पृष्ठभूमि का आकलन होने के लिए सन १९०० से १९६० ई. तक की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और साहित्यिक परिस्थितियों को देखना आवश्यक है।

१) <u>सामाजिक पृष्ठभूमि</u> :-

अंग्रेजी शासन के पूर्व भारतीय समाज ग्रामोंपर आधारित था। लेकिन फिर भी यह समाज आत्मनिर्भर था। सभी कामों का उचित बँटवारा हो गया था। प्रादेशिक तथा राष्ट्रीय स्तर पर इनका विकास नहीं हो पाया था। पूरे गाँव पर ग्राम-पंचायत का नियंत्रण रहता था और जजमानी प्रणाली का प्रचलन था। इसी व्यवस्था में ग्राम-जीवन बँधा था। व्यक्ति को अलग से स्थान नहीं दिया जाता था। समाज में स्त्रियों को भी कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं था। पूरा का पूरा ग्रामीण जीवन वर्ण व्यवस्थापर, जातिभेदों पर और जाति तथा वर्णभेद के आधारपर काम करनेवालों पर निर्भर रहता था। इसी के परिणामस्वरूप स्पृश्यास्पृश्य की भावना हमेशा बनी रहती थी। उँच-नीच की भावना ने जोर पकड़ लिया था। इसी वजह से अंधविश्वास और अशिक्षा फैल चुकी थी।

अंग्रेजों के शासन काल में पूँजी-पतियों के एक नवीन वर्ग का उदय हो गया। सामाजिक सुधार-संस्थाओं ने, विचारवंतोंने, आंदोलनों ने समाज को सुधारने के लिए प्रयास किये। राजाराम मोहन राय ने ब्रम्ह समाज की स्थापना की। उन्होंने सभी धर्मों के प्रति एवं धर्मग्रंथों के प्रति आदरभाव रखने के लिए लोगों को उपदेश किया। केशवचंद्र सेन ने प्रार्थना समाज की स्थापना की। उन्होंने स्त्री-शिक्षा, बालविवाह प्रतिबंध, विधवा पुनर्विवाह को प्रोत्साहन दिया तथा अंतर्जातिय विवाह को भी प्रोत्साहन दिया आदि अनेक समाज सुधार के कार्य किये - "प्रार्थना समाज का उद्देश्य भी वर्ण व्यवस्था तथा बालविवाह को समाप्त करना तथा विधवा विवाह एवं स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन देना था।"[१]

इस काल में बहुत सारी सामाजिक संस्थाओं ने समाज सुधार के कार्य में अपना योगदान दिया। राजाराम मोहन राय के प्रयासों से ही सती प्रथा बंद हो गयी। विधवा विवाह और पुनर्विवाह को मान्यता मिली। इन दोनों के लिए कानून बनाया गया। व्यक्तिगत रूप से भी कई लोगों ने समाज सुधार के प्रयास किये। - "ब्रम्हसमाज, प्रार्थनासमाज, आर्यसमाज तथा थियोसाफिकल सोसाइटी आदि के विचारों की ही प्रभाव-छाया विद्यमान है। सभी संप्रदायों ने विधवा विवाह तथा अंतर्जातीय विवाह को प्रश्रय दिया।"[२]

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में भारतीय समाज अज्ञान, अंधःकार, अंधश्रद्धा, रूढ़ी और परंपरा में छटपटा रहा था। जातीयता और अस्पृश्यता समाज को कलंकित कर रही थी। तत्कालिन समाज का अवलोकन करके समाज सुधारक गोपालकृष्ण गोखले ने "भारत सेवक" समाज की स्थापना सन् १९०५ में की थी, तो सन् १९०६ में "दलित जाति संघ" की स्थापना की थी। इस संस्थाद्वारा समाज में फैली अंधश्रद्धा और रीति को दूर करने का प्रयत्न हुआ। समाज सुधारक आगरकर जी ने शिक्षा का प्रचार करके समाज का अज्ञान दूर करने का प्रयास किया। गांधीजी ने अस्पृश्यता निर्मूलन के लिए हरिजन आंदोलन चलाया।

सामाजिक कुप्रथाओं के कारण भारतीय समाज में नारी की अवस्था अत्यंत शोचनीय थी। इनके जीवन सुधार के लिए महाराष्ट्र के महर्षि धोंडो केशव कर्वे जी ने चिरस्मरणीय कार्य किया। बाल-विधवा-विवाह समाज में रूढ़ करने के लिए, उन्होंने एक बाल विधवा के साथ विवाह करके, समाज के सामने एक आदर्श रखा। कर्वेजी ने बालविधवाश्रम की स्थापना करके हजारों की संख्या में बालविधवाओं का उद्धार किया।

इन्ही के साथ नारी विषयक अन्य प्रश्न भी इसी काल में उठे हैं; नारी की शिक्षा के साथ साथ जिनमें प्रमुख हैं समान अधिकारों की माँग तथा प्रेम के क्षेत्र में स्वयंवरण, यौन सम्बन्ध में गर्भाधान तथा कायर प्रेमी के पलायन पर समाज द्वारा तिरस्कार इत्यादी। अनमेल विवाह, नारी का दुहाजू-तिहाजू पति से विवाह, नारी विक्रय आदि कुरीतियों की ओर भी इसी समय विशेष ध्यान गया। स्वातंत्र्योत्तर काल में नारी को प्रत्येक क्षेत्र में समानाधिकार देने तथा स्त्री-शिक्षा को विशेष प्रोत्साहन मिलने से आधुनिक काल की नारी का सामाजिक स्थिति में अवश्य ही सुधार हुआ है। आधुनिक काल में नारी में भी परिवर्तन आया है - "नैतिक मूल्यों में परिवर्तन होने से यौन-नैतिकता के बंधन भी अधिक शिथिल होते गए तथा गृह-लक्ष्मी का आदर्श टूट गया एवं भारतीय नारी पश्चिमी स्वच्छंदता की ओर अग्रेसर होने लगी।"[३]

नारी विषयक समस्याओं के अतिरिक्त ज्यो अन्य सामाजिक विकृतियाँ युगीन समाज में व्याप्त थी, उनमें अशिक्षा, अज्ञान, अंधविश्वास, रूढ़ी-परम्परा आदि बातें दिखायी

देती हैं। स्वातंत्र्योत्तर नारी घर की चार दीवारी से बाहर निकली और वह पुरूष के कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्यरत हो गयी। यह वह समय था जब नारी स्वयं अपनी सामाजिक स्थिति के पुनर्परीक्षण के लिए उठ खड़ी हुई और दूसरी ओर सामाजिक नवजागृति के प्रणेताओं ने भी योगदान दिया। इन दोनों शक्तियों ने मिलकर विधवा-विवाह, विवाह-विच्छेद, प्रेम-विवाह आदि समस्याओं के और दूसरी ओर जनमत को पक्ष में किया और एक सीमा तक अपने प्रयत्नों में सफल भी हुए। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप एक ओर तो लड़कियों का अधिक उम्र में विवाह होने लगा साथही उसके लिए शिक्षा देना महत्त्वपूर्ण माना गया।

इसप्रकार हम देखते हैं कि स्वातंत्र्योत्तर काल में समाज कई तरह से विकसित हो गया है। चाहे औदयोगिकता के फलस्वरूप परिवार विघटन, मध्यवर्ग का निर्माण, भ्रष्टाचार जैसी कई समस्याएँ निर्माण हो गयी हो फिर भी स्वतंत्रता से पहले समाज की जो स्थिति थी उसमें कई संस्थाओं के निर्माण की वजह से विकास हो गया है। जिसे नकारा नहीं जा सकता।

किसी भी समाज का सम्पूर्ण विकास उसके आर्थिक ढाँचे पर ही निर्भर करता है। अर्थ की व्यवस्था का प्रभाव सामान्य-जनों पर पड़ता ही है। अर्थव्यवस्था में परिवर्तन आते ही सारे सामाजिक स्तर में परिवर्तन दिखायी देते हैं। आज समाज में उच्च वर्ग के सामने तो भौतिक स्तर संबंधी कोई समस्याएँ नहीं हैं। पूँजी के आधारपर वह सारी समस्याओं का हल ढूँढ़ लेता है। निम्न वर्ग में तो भुख की समस्या सर्वोपरि है। एक वक्त का भोजन मिल जाने पर वह दूसरे वक्त के भोजन की व्यवस्था के लिए चिंतातुर हो जाता है। मध्य वर्ग को सबसे ज्यादा संघर्ष का सामना करना पड़ता है। महत्त्वकांक्षा होने के कारण यह वर्ग न तो इच्छाओं की पूर्ति में सक्षम हो पाता है और न ही इच्छाओं का दमन कर सकता है। परिणामतः सबसे अधिक घुटन एवं तनाव अथवा निराशा इसी वर्ग में फैली दिखायी देती है।

अंग्रेजों का आगमन न होता तो भी यह आर्थिक और सांस्कृतिक क्रांति हमारे देश में अवश्य होती। - "हमारे देश में व्यवसाय और उदयोगधंदे काफी फैले हुए थे, किंतु

अंग्रेजोंने उन्हें नष्ट करके हमारी सामाजिक और आर्थिक उन्नति में महान व्याघात उपस्थित कर दिया। अंग्रेजों का उद्देश्य भारत का आर्थिक शोषण करना था। इसकी पूर्ति के लिए एक ओर तो उन्होंने देशी उदयोग-धंदों का समूल नाश किया और दूसरी ओर विदेशी पूँजी से भारत में नए उदयोग-धन्दे स्थापित किए। रेल, तार, ड़ाक आदि व्यवस्था उन्होंने अपनी आर्थिक और राजनीतिक सत्ता की दृष्टि से की। "[४]

भारत एक कृषि-प्रधान देश रहा है, लेकिन अंग्रेजों के शासन काल में जमींदारी प्रथा को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, फलस्वरूप आम किसान दोनों ओर से लुटा जाने लगा। आये दिन अकाल, महामारी और उस पर जमींदारों का अत्याचार। कुल मिलाकर किसानों, मजदुरों का जीवन नारकीय यातनाओंसे भी बदतर हो गया।

"आधुनिक समाज में दो प्रकार का अर्थ-संघर्ष मुख्यतः दिखाई देता है - प्रथम जमींदार एवं किसान के बीच चलनेवाला अर्थ-संघर्ष जो परम्परागत अधिक है। द्वितीय उदयोगपति और श्रमिक के बीच चलनेवाला, जो औदयोगिक क्रांति की देन है। वर्ग-संघर्ष में भी अर्थकाही संघर्ष चलता है। वस्तुतः वर्ग-संघर्ष का कारण भी अर्थ-संघर्ष स्वीकार किया जा सकता है। अर्थ-संघर्ष स्पष्टतः धनी और गरीब के मध्य चल रहा है, जिसे उच्च और निम्न वर्ग की संज्ञा दी गयी है। "[५] उच्च वर्ग निम्न वर्ग का शोषण करता रहा है। धन के बल पर पूँजीपति वर्ग द्वारा की जानेवाली मनमानी को श्रमिक विवश होकर स्वीकार करता है। इस विवशता का मूल कारण अर्थाभाव है। मजदूर मालिक के समक्ष अपने को निर्बल अनुभव करता है। स्वातंत्र्योत्तर काल में आधुनिक समाज का सर्वहारा वर्ग अपने को निर्बल अनुभव नहीं करता। संगठित होकर सर्वहारा वर्ग अपनी शक्ति का एकीकरण और परीक्षण करने लगा है। समाजवादी चेतना ने सर्वहारा के अहंम् को जगा दिया है। जनतंत्र ने व्यक्ति की महत्ता को प्रतिष्ठा दी है। ऐसी स्थिति में आर्थिक असंतुलन के विरूद्ध संघर्ष का तीव्र होना ही स्वाभाविक है।

भारत में आधुनिक शिक्षा का प्रारंभ १९ वीं शताब्दी में हुआ था। यह शिक्षा-नीति भारतियों के हित में न होकर अंग्रेजों के ही हित में थी। अंग्रेज सरकार यह चाहती थी कि पाश्चात्य शिक्षा के माध्यम से भारत में एक ऐसा शिक्षित वर्ग तैयार किया

जाये, जो उसकी शासन व्यवस्था की नींव को सदृढ़ रख सके और सदैव उसका साथ दे। ब्रिटिश सरकार की यह भी नीति थी की कुछ ही व्यक्ति उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकें। इसी आधार पर उन्होंने विश्वविद्यालय की शिक्षा पर रोक लगा दी थी और शिक्षा को अत्यंत महंगी बना दिया। परिणामस्वरूप जन-साधारण समाज इस शिक्षा से वंचित रह गया। पाश्चात्य शिक्षा ने वैचारिक धरातल की दूरी और भी बढ़ा दी। शिक्षा के प्रति उपेक्षा-भाव, महंगी शिक्षा तथा उच्चतम शिक्षा पर भी रोक लगने के कारण यह परिणाम निकला कि, समाज का एक छोटा अंशही शिक्षित हो सका। अतः सांस्कृतिक धरातल पर भी सामान्य जनता उपेक्षित रही तथा समाज के थोड़े लोग ही शिक्षित हुए।

शिक्षा के कारण भारतीय नारी में भी एक जाग्रति आयी। उसने स्वयं को पुरूष की दासता से मुक्त करना चाहा। अभी तक नारी मात्र एक दासी के रूप में समझी जाती थी, किंतु उसने अब यह अनुभव किया कि वह दासी न होकर पुरूष के समकक्ष है। समाज में पुरूषों के समान ही उसे अधिकार मिल रहें हैं। शिक्षित नारी ने सामाजिक बंधनों को त्याज्य समझा, जो उसकी स्वच्छंदता में बाधक थे। इस शिक्षा के कारण ही भारतियों में स्वतंत्रता की भावना जाग्रत हुई और उन्होंने अपने को अंग्रेजों की दासता से मुक्त किया। शिक्षा ने नारी को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाया है। शिक्षा के प्रभाव से नारी भी परम्परागत जड़ मान्यताओं एवं रूढ़ियों का विरोध करने लगी। शिक्षा के परिणामस्वरूप नारी में आत्मसम्मान की भावना का समावेश हुआ है। इसतरह शिक्षा की वजह से आधुनिक नारी में परिवर्तन हुआ दिखायी देता है।

२) <u>सांस्कृतिक पृष्ठभूमि</u> :

संस्कृति का समाज से अभिन्न सम्बन्ध है। वास्तव में किसी मानव-समाज की मानस-भूमि में ही अधिकाशतः उसकी संस्कृति निवास करती है। मानव-समाज के विचारों, उसकी परम्पराओं के परिष्कार एवं विकास की स्थिति ही उसकी संस्कृति है।

भारतीय संस्कृति पर पाश्चातों का सबसे पहला प्रभाव रहन-सहन और वेशभूषा पर पड़ा है। भारतीय व्यक्ति जो धोती और कुर्तेवाली पोशाख पहना करता था, अब पॅन्ट-शर्ट

पहनने लगा है। खान-पान में भी काफी परिवर्तन आ गया है। यहाँ तक कि भारतीय घरों की रचना पर भी पाश्चात्य प्रभाव दिखायी देता है। भारतीय संस्कृति पाश्चात्य संस्कृति को अपना रही है।

पहले स्त्री को देवता माना जाता था, लेकिन बाद में अंग्रेजों के शासन काल तक उसे सिर्फ एक भोग की वस्तु माना जाने लगा। जैसे ही पाश्चातों का आगमन इस देश में हुआ, उन्होंने स्त्री के विकास के लिए कई कदम उठाए। जैसे कई अनिष्ट प्रथाएँ नष्ट कर दी गयीं। स्त्री को शिक्षा दी जाने लगी। शिक्षा के कारण स्त्री-स्वातंत्र्य की भावना स्त्रियों के हृदय में घर कर गयी और उनके हृदय में समानाधिकार की भावना निर्माण की गयी। अतः यह कहा जा सकता है कि पाश्चात्य संस्कृति ने भारतीय संस्कृति को काफी प्रभावित किया है। सिर्फ अंग्रेजों की संस्कृति ही नहीं तो मुसलमान संस्कृति ने भी भारतीय संस्कृति को प्रभावित किया है।

स्वातंत्र्योत्तर समाज में पुरूष के समकक्ष स्त्री को भी समान अवसर और स्थान मिलने लगा है। स्त्री पुरूष की अनुकर्ता मात्र न होकर अब अपने स्वतंत्र अस्तित्व के प्रति भी जागरूक है। आधुनिक नारी अपने प्रति समाज की परंपरागत धारणाओं को नष्ट करने के लिए पूर्ण सक्रिय हो चुकी है।

भारतीय नारी का आदर्श पातिवृत्य धर्म है। इसकी रक्षा के लिए वैवाहिक पवित्रता के कठोर नियम बनाए गए हैं। किंतु पाश्चात्य प्रभाव से विवाह सम्बन्धी नियमों में शिथिलता आती रही है। पति के प्रति भी नारी एकनिष्ठ नहीं है। पति रहते हुए वह दूसरे को चाहती है और अवसर मिलने पर पति को छोड़ देती है। किंतु अपने परम्परागत संस्कारों एवं समाजमान्य आदर्शों के कारण वह अपने से और समाज से सामंजस्य नहीं कर पाती है। यहाँ पाश्चात्य और भारतीय आदर्शों का संघर्ष हो गया है।

अब विवाह के प्रति परंपरागत दृष्टिकोण निरर्थक हो गया है। विवाह से सम्बन्धित दो आत्माओं का पुनीत मिलन, जन्म-जन्मांतर का संबंध, स्त्री-पुरूष का स्थायी बंधन आदि जैसी - परम्परागत धारणाएँ क्षीण हो चुकी हैं। आज विवाह एक समझौता अथवा मैत्री-संबंध

के रूप में स्वीकार किया जाता है। वर्तमान अर्थ-व्यवस्था, औदयोगिक-क्रांति, नारी-जागरण और शिक्षा के प्रभाव ने वैवाहिक मूल्यों को नवीन रूप दिया है। स्वच्छंदता की भावना एवं व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन ने विवाह परंपरागत धारणा को पूर्णतः परिवर्तित कर दिया है। इसप्रकार आधुनिक काल में विवाह एक आर्थिक-समझौता, प्रेम-समझौता मात्र रह गया है। यहाँ तक कि विवाह की आवश्यकता को ही गौण स्वीकार किया जाने लगा है। इसप्रकार विवाह के परम्परागत रूप बदल रहे हैं।

अब यह आवश्यक नहीं कि जिससे प्रेम हो उसी से विवाह भी और जिससे विवाह हो उससे प्रेम भी। विवाहपूर्व यौन सम्बन्धों को मान्यता दिलाने का प्रयास हो रहा है। प्रेम और यौन सम्बन्धों को भी नई नैतिकता में यह मानकर पृथक किया जा रहा है।

युगानुकूल समाज-व्यवस्था में परिवर्तन होता रहा है। आदिम युग का समाज आज नहीं है। प्राचीन परंपराएँ, रीति-रिवाज, संस्कार आदि में परिवर्तन हो रहा है। सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया अत्यंत धीमी होती है। आधुनिक युग के परिवर्तन के संदर्भ में व्यक्ति, परिवार, विवाह, प्रेम एवं यौन आदि में परिवर्तन हो रहा है। साथही अब जातीय परिवर्तन भी हो रहा है। परंपरागत जातीय एवं वर्ण-व्यवस्था के बंधन टूट चुके हैं। शादी-ब्याह में भी अब जाति-पाती के बारे में नहीं सोचा जाता है। साथही अंतर्जातीय शादी होने से जाती के साथ दहेज आदि की समस्या भी समाप्त हो रही है। इसतरह सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ सांस्कृतिक परिवर्तन भी अब हो रहा है।

३) <u>धार्मिक पृष्ठभूमि</u> :-

भारतीय समाज धार्मिक रूढ़ियों से आक्रांत है। हमारे समाज में धर्म-संबंधी अनेक दृष्टिकोण और अंधविश्वास तथा रूढ़िवादिता है। धर्म का परम्परागत रूप अलौकिक तत्त्व अर्थात ईश्वर, देवी-देवता पर आधारित था परंतु बाद में वह मानवीय बन गया। पहले धर्म को एक भावात्मक रूप में देखा जाता था। परंतु आज उसकी बौद्धिक व्याख्या प्रस्तुत की जाती है। पहले धर्म नीति एवं सत्य के विरूद्ध था। आज उसके नीति सम्मत सत्य रूप को प्रतिष्ठा मिलने लगी है। वर्तमान काल में धर्म के रूढ़िगत रूप का त्याग किया जा रहा है।

अंग्रेज भारत में व्यापार के दृष्टिकोन से आये। इसके साथ ही सिर्फ राज्य विस्तार ही अंग्रेजों का उद्देश्य नहीं था, इसके साथ ही साथ ईसाई धर्म का प्रसार करना यह भी उनका एक उद्देश्य था। उनके आने से पहले भारतीय समाज रूढ़ियों, अंधविश्वासों में जकड़ा था। समाज में कर्मकांड, बाहयाड़म्बर, उँच-नीच, अनिष्ट प्रथाएँ, अज्ञान और अधर्म फैल चुका था। समाज सुधार के नामपर अंग्रेजों ने शिक्षा के लिए स्कूल, कॉलेज खोलें। सरकारी नौकरियों में क्लर्क वगैरा लोगों की नियुक्ति की। इन्हीं स्कूलों, कॉलेजों के माध्यम से ईसाई धर्म का प्रसार किया। गरीब लोगों की मद्द् करके उन्हें ईसाई बनाया गया। पैसों का लालच दिखाकर और हर प्रकार प्रयास कर लोगों को ईसाई बनाया गया।

आधुनिक काल में शिक्षा के प्रचार और प्रसार के कारण एक शिक्षित युवा पीढ़ी तैयार हो गयी और उन्होंने धर्म के सही रूप को पहचाना। इसी वजह से धर्म का रूप बदलने लगा। स्वातंत्र्योत्तर काल में धर्म की दृष्टि से अगर देखा जाए तो तरह-तरह के परिवर्तन आए हैं। शिक्षा की वजह से लोगों में अब जनजागृती आने लगी और रूढ़ी-परम्पराएँ आदि को लोग मानने से इन्कार करने लगे हैं। स्वातंत्र्योत्तर काल में अधिकतर वैचारिक जागृति के कारण लोग अंधश्रद्धाओं को त्यागने लगे हैं। पहले जो धार्मिक कट्टरता पायी जाती थी, शुद्रों को कम दर्जा दिया जाता था, अब वैसी स्थिति नहीं रही। डा.आंबेडकर जैसे लोगों की वजह से शुद्रों को समाज में उनका स्थान हासिल हुआ है। उन्हें मंदिरों में प्रवेश मिल गया है। कई लोगों ने धार्मिक दृष्टियों से लोगों के विचारों में परिवर्तन कर दिया है।

इन रूढ़ि-परम्पराओं का ज्यादा परिणाम नारी पर हुआ है। आज कई पुरानमतवादी लोग रूढ़ि-परम्पराओं में चिपके हुए दिखायी देते हैं। वे पूर्णतः अंधविश्वास से जकड़े हुए हैं। पहले स्त्री को देवता माना जाता था। दहेज और आर्थिक अभाव के कारण नारी का जन्म ही बुरा माना जाता था। आज भी कई लोग ऐसे दिखायी देते हैं। भारतीय समाज मे यह भी रूढ़ि विद्यमान थी कि विधवा को घर से बाहर निकलना ही अधर्म माना जाता था। लेकिन कालांतर में नारी-शिक्षा एवं समाजसुधार आंदोलनों ने इसका विरोध किया। धार्मिक परिवर्तन के कारण नैतिकता के परम्परागत मूल्य भी विश्रृंखलित हो गए हैं। धर्म

मे तर्क को स्थान दिया जाने लगा है। युवा-वर्ग में परम्परागत धर्म के प्रति अश्रद्धा की भावना प्रबल हो रही है। धर्म के प्रति आस्था अब भी समाज में विद्यमान है किंतु उसके रूढ़िवादी स्वरूप को स्वीकार नहीं किया गया है।

४) <u>साहित्यिक पृष्ठभूमि</u> :-

आधुनिक हिंदी उपन्यास का प्रारम्भ भारतेंदु हरिश्चंद्र के समय से ही माना जाता है। साहित्य के विविध क्षेत्रों में भारतेंदु का प्रभाव व्यापक रूप में पड़ा है। हिंदी उपन्यासों के विकास का अध्ययन सम्राट प्रेमचंद के युग के साथ संबंधित माना जाता है। अतः उपन्यास साहित्य के विकास को प्रेमचंदजी के परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है। इस दृष्टि से उपन्यास साहित्य को निम्न हिस्सों में विभाजित किया जाता है।

क) प्रेमचंद पूर्व-युग (१९०० से १९१५)
ख) प्रेमचंद युग (१९१६ से १९३६)
ग) प्रेमचंदोत्तर युग - (१९३७ से १९६०)

क) <u>प्रेमचंद युग - (१९०० से १९१५)</u>

इस युग में ऐय्यारी और तिलस्मी उपन्यासों का प्राधान्य मिलता है। अति प्राकृतिक, अद्भूत और असाधारण घटनाओं से आश्चर्यजनक परिस्थितियों का निर्माण तिलस्मी कथानकों का प्रधान आकर्षण था। देवकीनंदन खत्री इस परंपरा के उद्घाटक थे। किशोरीलाल गोस्वामी ने अपने उपन्यासोंद्वारा सामाजिक विषय का वासना के रंगों में रंगा चित्र प्रस्तुत किया है, जो उच्च कोटि का नहीं है। इनकी उर्दु शैली के कारण इसका महत्त्व कम हो जाता है। अयोध्यासिंह उपाध्याय और ब्रजनंदन सहाय के उपन्यासों में भाव प्रधानता मिलती है। इस काल के मौलिक उपन्यासों का लक्ष्य केवल मनोरंजन रहा है। प्रारम्भिक काल की अनुवाद की प्रवृत्ति का विकास इस काल में अधिक हुआ। उर्दु, अंग्रेजी और बंगला उपन्यासों के अनुवाद हुए। अनुवाद करनेवालों में पं.रूपनारायण पाण्डेय, बाबू गोपालराम गहमरी और पंडित ईश्वरीप्रसाद विशेष उल्लेखनीय है।

इसप्रकार इस युग में अनुदित उपन्यासों के साथ मौलिक रचनाएँ चार प्रकार की हुओी हैं - तिलस्मी, साहसिक, जासूसी एवं रोमानी इसी कारण इस युग के उपन्यासों में कल्पना की ओर रूझान रहा है।

ख) <u>प्रेमचंद युग - (१९१६ से १९३६)</u>

इस युग को हिंदी उपन्यास साहित्य के विकास का युग माना जाता है। इस युग के सर्वप्रमुख और प्रतिनिधि उपन्यासकार प्रेमचंद हैं।

"प्रेमचंद ने भारतीय नागरिक एवं ग्रामीण जीवन के अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों तथा उनके विविध पक्षों पर मानववादी दृष्टिकोण से विचार किया। यही कारण है कि उनकी कृतियाँ जनता का साहित्य हैं, जिनमें भारतीय सामाजिक जीवन प्रतिबिम्बित होता है। ग्रामीण समाज, सामाजिक कुरीतियाँ, धार्मिक पाखण्ड, वेश्या-समस्या, अछूत समस्या, राजनैतिक-स्वतंत्रता, क्रांति का स्वरूप तथा समाज के विभिन्न वर्ग आदि उनके उपन्यासों के मुख्य विषय कहे जा सकते हैं।"[६]

प्रेमचंदजी ने उपन्यासों का उद्देश्य मनोरंजन स्थान पर यथार्थ की भूमिका पर चरित्र-चित्रण की ओर ध्यान दिया और मानव जीवन तथा कृषक वर्ग एवं राष्ट्रीय आंदोलन को बड़ी संवेदन शैली में प्रदर्शित किया है। हिंदी उपन्यासों में यथार्थवादी विचारधारा का उचित प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया। प्रेमचंद उपन्यास सम्राट के पद पर गौरव के साथ बैठ सके हैं। आधुनिक उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता - मानवतावादी दृष्टि एवं यथार्थ की अनुभूति का पूर्ण परिपाक प्रेमचंद के उपन्यासों में मिलता है।

दूसरे इस युग के महत्त्वपूर्ण उपन्यासकार है - जयशंकर प्रसाद। जिन्होंने "कंकाल", "तितली" और "इरावती"(अधुरा) जैसे उपन्यास लिखे। "इरावती" इस ऐतिहासिक उपन्यास द्वारा भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल रूप का चित्रण किया है। जो सांस्कृतिक पुनर्जागरण की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है। जैसे कौशिक, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, जैनेंद्रकुमार जिनके "सुनिता", "परख", "कल्याणी" आदि सामाजिक उपन्यास रहे हैं। इनके उपन्यासों में तत्कालीन सामाजिक स्थिति के चित्र मिलते हैं। वृंदावनलाल वर्मा ने ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। उनके प्रमुख उपन्यास हैं - "झाँसी की रानी", "विराटा की पद्मिनी", "गढ़ कुण्ढार,"

"मृगनयनी" आदि। सभी उपन्यासों में लेखक का दृष्टिकोण सामाजिक ही रहा है।

ग) प्रेमचंदोत्तर युग - (१९३७ से १९६०)

प्रेमचंदोत्तर युगीन हिंदी उपन्यास का विकास दो विभागों में हुआ है। इनमें से प्रथम विकास मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों में तो द्वितीय पूर्ववर्त्ती कथा-परंपरा पर। उपन्यासकार जैनेंद्र को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति में बड़ी सफलता मिली है। इसके उपरांत वैयक्तिक अध्ययन की परम्परा ही चल पड़ी। मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासकारों में जैनेंद्रजी के अतिरिक्त भगवतीप्रसाद वाजपेयी, इलाश्चंद्र जोशी आदि प्रमुख हैं। इलाश्चंद्र जोशी अपनी गहरी मनोवैज्ञानिक दृष्टि एवं फ्रायड़ियन प्रभाव के लिए प्रसिद्ध हैं। दार्शनिक तथ्यों के विवेचन से पूर्ण और जीवन संबंधी गहन विचारों का बड़ा सुलझा हुआ रूप प्रस्तुत करनेवालों में अज्ञेयजी प्रमुख हैं। जिनके प्रमुख उपन्यास हैं - "शेखर : एक जीवनी", "अपने अपने अजनबी", "नदी के द्वीप"। इस काल के मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास लेखकों ने सेक्स को प्रधानता दी है। द्वारिकाप्रसाद मिश्र ने यौन वर्जनाओं की अभिव्यक्ति में ही मनोविश्लेषणात्मक यथार्थवाद को महत्व दिया है।

इस युग के प्रसिद्ध उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा (चित्रलेखा) का कृतित्व बड़ा उत्कृष्ठ है। उनके "टेढे-मेढे रस्तें", "भूले-बिसरे चित्र" आदि उपन्यास आधुनिक युग का नवजागरण राजनीति की सामाजिक एवं ऐतिहासिक भित्तिपर निर्मित है। आ.हजारीप्रसाद द्विवेदीजी के "बाणभट्ट की आत्मकथा", "चारूचंद्र लेख" प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं।

आजकल यथार्थवाद का नग्न रूप यथार्थवाद में दिखायी देता है। आधुनिक काल में उपन्यासकारों की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि हम उन्हें किसी विशेष कोटि में नहीं डाल सकते हैं। एक ओर मनोविश्लेषण के धरातल पर जैसे जैनेंद्र के उपन्यास और धर्मवीर भारती के "गुनाहों का देवता" जैसे उपन्यास लिखे गये तो दूसरी ओर उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में नये नये प्रयोग किये गये हैं - जैसे राजेंद्र यादव और मन्नु भंडारीका "एक इंच मुस्कान" और धर्मवीर भारती द्वारा लिखित "सूरज का सातवाँ घोडा"। धर्मवीर भारती और उनके अन्य साथियों ने मिलकर लिखा "ग्यारह सपनों का देश" उपन्यास, देवेश ठाकूर का

"काँचघर" तो दूसरी ओर प्राचीन शैली में लिखनेवाले साहित्यकार भी कम नहीं है। नये-नये प्रयोगों के साथही प्राचीनता को खींचा जा रहा है। इसी वजह से उन साहित्यकारों को एक विशेष कोटि में रखना कठिन है।

साहित्यिक पृष्ठभूमि देखने के उपरांत हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रेमचंद पूर्व, प्रेमचंद युग, प्रेमचंदोत्तर आदि युगों में उपन्यास साहित्य धीरे-धीरे विकसित होता हुआ नजर आता है और नये नये प्रयोग दिखायी देते है।

५) धर्मवीर भारती के उपन्यासों में अंकित युगचेतनाएँ

धर्मवीर भारती के पूर्व हिंदी उपन्यास मूलतः दो दृष्टियों से रचे गये हैं। पहला दृष्टिकोण सामाजिक है और दूसरा वैयक्तिक। अर्थात ऐसे उपन्यास जिनमें व्यक्ति की तुलना में सामाजिक समस्याओं की दृष्टि से व्यक्ति की समस्याओं को महत्त्व दिया है।

"गुनाहों का देवता" भारती का स्वतंत्रता प्राप्ति के समय का उपन्यास है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले ही हिंदी उपन्यासों का मूल स्वर दासता से मुक्ति तथा प्राचीन संस्कारों और अंधविश्वासों को तोड़ता था। इस निमित्त सारे देश में एक बौद्धिक जागरण फैल गया था। "चित्रलेखा", "दिव्या" और "त्यागपत्र" उपन्यासों में मानव मुक्ति के स्वर आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक धरातल पर देखे जा सकते हैं, क्योंकि यह वह युग था जब देश के बुद्धिजीवी विश्व के विकासशील देशों के विचारों से प्रभाव ग्रहण कर रहे थे। देश स्वतंत्र होने के बाद विदेशी दासता से मुक्ति का प्रश्न तो हल हो गया किंतु आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक मुक्ति के प्रश्न और समस्याओं से मुक्ति दिलाने का कार्य अब भी शेष था। अतः स्वाधीनता प्राप्ति के बाद हिंदी उपन्यासों के कथावस्तु का मुख्य आधार बनी स्वाधीनता के बाद की परिस्थितियाँ, सांस्कृतिक क्षेत्र में नारी स्वाधीनता, समाज में नारी-पुरूष, जाति-व्यवस्था से उत्पन्न समस्याएँ तथा आर्थिक विषमताओं से उत्पन्न अमानवीय स्थितियाँ समाधान पाने के लिए हमारे साहित्यकारों के सामने बलवती हो उठी। फलतः हिंदी की प्रगतिवादी चेतना से मनुष्य को आर्थिक और सांस्कृतिक धरातल पर मुक्त रखने की विचारधारा को स्वर मिला। हमारे साहित्यकारों का दृष्टिकोण यथार्थवादी बन गया। हिंदी लेखन का यह वैचारिक परिवेश था।

धर्मवीर भारती प्रेमचंदोत्तर कालीन उपन्यासकार हैं। भारती जी के दोनों उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास हैं। इनका पहला उपन्यास "गुनाहों का देवता" सन १९४९ में प्रकाशित हुआ और इनका दूसरा उपन्यास "सूरज का सातवाँ घोडा" सन १९५२ में प्रकाशित हुआ है। इनके दोनो उपन्यास सामाजिक हैं। "गुनाहों का देवता" और "सूरज का सातवाँ घोडा" दोनों उपन्यास बहुचर्चित उपन्यास हैं।

भारतीजी ने निम्नमध्यवर्गीय और मध्यवर्गीय समाज के प्रेम के माध्यम से समाज की समस्याओं का चित्रण किया है। वे इस समाज के गुण-दोषों के साथ उस युग के समाज की बदलती परिस्थिति से अवगत कराते हैं। वे हर वक्त इन उपन्यासों में समाजहित को केंद्रबिंदु बनाते हुए दिखायी देते हैं। धर्मवीर भारती जी ने इन उपन्यासों के माध्यम से उस काल की सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया है। ज्यादहतर उन समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया हैं; जो उस काल में समाज में प्रचलित थी, जैसे - रूढ़ी-परम्परा, नारी शिक्षा, शैक्षिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, धार्मिक स्थिति आदि।

"गुनाहों का देवता" भारती जी का पहला उपन्यास है। यह उपन्यास मध्यवर्गीय जीवन की प्रेमकहानी अवश्य है, किंतु इसमें इन समस्याओं को ज्यादा महत्त्व नहीं दिया गया है, जो आजादी के पहले और बाद में भी मध्यवर्गीय मनुष्य के जीवन संबंधों को आर्थिक राजनीतिक और सांस्कृतिक धरातल पर उसके बेहत्तर जीवन के लिए प्रश्न बनी खड़ी थी। "गुनाहों का देवता" में मध्यवर्गीय जीवन की यथार्थता को स्पष्ट किया है। इसके साथही इस उपन्यास में आदर्श प्रेम को ढ़ंग से चित्रित किया है। यह उपन्यास मध्यवर्गीय समाज के टूटते बनते संक्रातिकालीन आदर्शों का चित्रण करता हुआ मूलतः प्रेमकथाही रह जाता है, क्योंकि इसमें प्रधानतः मध्यवर्गीय लोगों की प्रेम की कुण्ठाएँ चित्रित हैं। प्रेम वास्तव में सामाजिक भावनाओं में सबसे अधिक प्रबल भावना है। पूँजीवादी समाज-व्यवस्था ने मानवीय संबंधों के आधार के रूप में प्रेम को नहीं रहने दिया है। अब वह बहुत कुछ "आर्थिक निर्भरता" का दूसरा नाम होकर रह गया है।

"सूरज का सातवाँ घोडा" इस उपन्यास के कथानक के बारे में इसी उपन्यास

में कहा है कि "देखो ये कहानियाँ वास्तव में प्रेम नहीं वरन् उस जिंदगी का चित्रण करती हैं, जिसे आज का निम्न मध्यवर्ग जी रहा है। उसमें प्रेम से कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो गया है। आज का आर्थिक संघर्ष, नैतिक विशृंखलता इसलिए इतना अनाचार, निराशा, कटुता और अँधेरा मध्यवर्ग पर छा गया है।"[७]

भारती के उपन्यास स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद में लिखे गये उपन्यास हैं। इस काल में देश में बहुत सी हलचले हो गयी थी, फिर भी भारती जी के उपन्यासों में राजनीतिक जीवन का कहीं भी संकेत नहीं आया है। "गुनाहों का देवता" उपन्यास में एक राजकीय कार्यकर्ता की पहचान मात्र की गयी है। जिसका नाम कैलाश मिश्र है, एक कॉमरेड है जो शाहजहाँपूर के प्रसिद्ध काँग्रेसी कार्यकर्ता और म्युनिसिपल कमिश्नर श्री शंकरलाल मिश्र का छोटा भाई है। स्वाभाविक ही वह भी राजनीति का कार्यकर्ता है। "सूरज का सातवाँ घोडा" इस उपन्यास में तो राजनीति का कुछ संकेत भी नहीं है।

क) <u>सामाजिक</u> :

धर्मवीर भारती के उपन्यास सामाजिक हैं। "गुनाहों का देवता" उपन्यास में डा.शुक्ला जो उपन्यास के आरंभ में जातिप्रथा का विरोध करते हुए दिखायी देते हैं। बाद में वे यह स्वीकार करते हुए कहते हैं कि - "यह सचमुच जाति, विवाह, सभी परम्परायें बहुत बुरी हैं। बुरी तरह सड़ गयी हैं। इन्हें तो काट फेंकना चाहिए।"[८] इस प्रकार युग के अनुकुल उनके आदर्श बदलते हैं। जाति प्रथा की वजह से ही सुधा और चन्दर इकठ्ठा नहीं आ सके। साथ ही इस उपन्यास में स्त्री का परम्परा के प्रति विरोध का परोक्ष रूप भी मिलता है। जिसकी अभिव्यक्ति धर्म, विवाह, परिवार, संबंध आदि के परम्परागत मूल्यों के प्रति विद्रोह में हुई हैं। इस उपन्यास की आधुनिक युवा-वर्ग की प्रतीक सुधा और बिनती जाति-पाति के बंधनों में अविश्वास व्यक्त करती है। बिनती विवाह की वेदी पर अपने अयोग्य वर का विरोध कर स्वाभिमान का परिचय देती है।

"सूरज का सातवाँ घोडा" में भी जमुना नीचे गोत की होने से मतलब इसी जाति प्रथा की वजह से तन्ना के साथ शादी नहीं कर सकती है।

"गुनाहों का देवता" उपन्यास में बिनती सहायक पात्र के रूप में आती है, जो एक देहाती लड़की है। वह अपनी पढ़ाई पूर्ण करती है। तो दूसरी ओर गेसू जो विश्वविदयालय में सिर्फ लड़के पढ़ते हैं, वहाँ लड़कियाँ नहीं जा सकती थी। उस समय लड़कियों के लिए कॉलेज खुल चुके थे, उसी कॉलेज में लड़कियों का जाना योग्य माना जाता था। विश्वविद्यालय में लड़कों के साथ लडकियों का पढ़ाई लेना समाज मान्य नहीं था। इसलिए गेसू को भी विश्वविद्यालय में पढ़ाई लेने की इच्छा होने पर भी वह नहीं जा सकती है।

"सूरज का सातवाँ घोडा" उपन्यास में जमुना के आर्थिक अभाव के कारण स्कूल छोड़ना पड़ता है। इसमें जो लिली है वह मात्र पढ़ी-लिखी है।

"गुनाहों का देवता" उपन्यास की बिनती का दहेज की वजह से ब्याह टूट जाता है। समाज की कठोरता सुधा और चन्दर के जीवन को विषादमय एवं अस्त-व्यस्त बना देती है। समाज की परिस्थितियाँ चन्दर को पंगु बना देती है। इसी वजह से न चाहने पर भी सुधा को कैलाश से विवाह करने के लिए चन्दर ही तैयार करता है। विज्ञान, पूँजीवादी एवं सामाजिक संघर्षो ने व्यक्ति को आत्मकेंद्रित, संघर्षशील, मृत्यु के प्रति सचेत और अस्तित्व के प्रति भयभीत बना दिया है। परम्परागत रूढ़ियों एवं संस्कारों को चन्दर तोड़ना चाहता है, किंतु उसके लिए सामाजिक क्रांति नहीं करना चाहता है।

जीवन में अर्थ को बहुत महत्त्व है। दोनो ही उपन्यासों में आर्थिक स्थिति को दर्शाया गया है। "गुनाहों का देवता" में चन्दर की शिक्षा शुक्ला के आर्थिक सहायता से होती है। "सूरज का सातवाँ घोडा" में जमुना की शादी दहेज के अभाव में तन्ना से नहीं होती। इस उपन्यास में एक स्थान पर माणिक मुल्ला कहते हैं - "आर्थिक ढाँचा हमारे मन पर इतना अजब प्रभाव ड़ालता है कि मन की सारी भावनाएँ उससे स्वाधीन नहीं हो पाती।"[९] निम्नवर्ग की सत्ती को आर्थिक अभाव के कारण साबुन बेचने का काम करना पड़ता है। इस उपन्यास में चित्रित आर्थिक स्थिति के बारे में प्रभा वर्मा कहती है - "विषमता एवं अभाव से संघर्ष करता हुआ आज का व्यक्ति वर्तमान समाज और शासन-प्रणाली के

विरूद्ध आक्रोश एवं विद्रोह की भावना रखता है तथा सामाजिक परिवर्तन के लिए क्रांति की आकांक्षा भी रखता है। "[१०]

ख) <u>सांस्कृतिक</u> :-

"गुनाहों का देवता" उपन्यास में उपन्यासकार के संस्कृति के बारे में विचार युग के अनुसार बदलते हुए दिखायी देते हैं। उपन्यास में प्रथम डा.शुक्ला का यह कथन दिखाया है - "फिर हमारे भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं को बहुत ही सावधानी से समझने की आवश्यकता है। यह समझ लो कि मानव-जाति दुर्बल नहीं है, अपने विकास क्रम में वह उन्हीं संस्थाओं, रीति-रिवाजों और परम्पराओं को रहने देती है, जो उसके अस्तित्व के लिए बहुत आवश्यक होती है। "[११] जब चन्दर अंतर्जातीय विवाह की बात करता है तो वे कहते हैं - "शादी में सबसे बड़ी बात होती है - सांस्कृतिक समानता। और जब अलग-अलग जाति में अलग-अलग रीति-रिवाज हैं तो एक जाति की लड़की दूसरी जाति में जाकर कभी भी अपने को ठीक से संतुलित नहीं कर सकती। "[१२]

इस तरह परम्परा के साथ कई सांस्कृतिक पद्धतियों के भी दर्शन होते हैं। जैसे - ब्याह तय करने के लिए जाते वक्त लड़केवालों की ओर से लड़की को कुछ-न-कुछ भेंट के रूप में देना तथा कैलाश के बड़े भाई शंकर बाबू भी सुधा के लिए मोतियों की माला भेंट के रूप में देते है।

"सूरज का सातवाँ घोडा" उपन्यास में भी एक स्थानपर संस्कृति का परिचय मिलता है - जब लिली को मेहमान देखने के लिए आते हैं तब उसके लिए विशेष तैय्यारी की जाती है - "आज लिली को जेवर पहनाया जानेवाला था, शाम को सात बजे लोग आनेवाले थे.... ससूर आनेवाले थे और कम्मो जो लिली की घनिष्ट मित्र थी, पर उस घर को सजाने और लिली को सजाने का पूरा भार था। "[१३] भारती जी के उपन्यासों में इसतरह संस्कृति का परिचय मिलता है।

ग) <u>धार्मिक</u>

जिस काल में भारती जी के उपन्यास लिखे गये, उस काल में समाज मानसपर

धर्म का गहरा प्रभांव दिखायी देता है। "गुनाहों का देवता" उपन्यास में एक जगह पर बायबल की सेलामी और हैराद की कहानी का जिक्र आया है। पम्मी की कहानी समाप्त होते होते मतलब अंत में वह खुद ईसाई होकर भी हिंदुओ के विवाह संस्कारें को, विवाह के स्थायित्व को महत्त्व देती है। हिंदु नारी के जीवन में पुजा-पाठ का महत्त्व अनन्य साधारण है। इसके बारे में सुधा कहती है - "हिंदु नारी इतनी असहाय होती है, उसे पति से, पुत्र से, सभी से लांछन, अपमान और तिरस्कार मिलता है कि पूजा-पाठ न हो तो पशु बन जाये। पुजा-पाठ ही ने हिंदु नारी का चरित्र अभी तक इतना उँचा रखा है।"[१४]

"सूरज का सातवाँ घोडा" उपन्यास में जमुना का ब्याह एक बुढ़े से होने के कारण उसे संतान प्राप्त नहीं होती। इसलिए वह एक ज्योतिषी के पास जाती है। ज्योतिषी उसे यह सुझाव बताता है कि - "कार्तिक भर सुबह गंगा नहाकर चण्ड़ी देवी को पीले फूल और ब्राम्हणों को चना, जौ और सोने का दान करना चाहिए।"[१५] इसी तरह जमुना यह मान भी जाती है। इसप्रकार उपन्यासकार ने स्वातंत्र्योत्तर कालीन समाज में धर्म के पीछे छुपी अंधश्रद्धा का चित्रण किया है। साथ ही उपन्यासकारने उससे उत्पन्न परिणाम की ओर संकेत किया है।

निष्कर्ष :

धर्मवीर भारती जी के उपन्यास सामाजिक उपन्यास है। इन उपन्यासों के माध्यम से भारती जी ने समाज की हर समस्या का, हर स्थिति का चित्रण किया है। उस युग की सामाजिक परिस्थितियों पर प्रकाश ड़ाला है। जैसे विवाह की स्थिति, धार्मिक स्थिति, सांस्कृतिक स्थिति, आर्थिक स्थिति आदि बातों का जिक्र किया है।

धर्मवीर भारती जी ने निम्नमध्यवर्गीय समाज के प्रेम के माध्यम से समाज की समस्याओं का चित्रण किया है। वे इस समाज के गुण-दोषों के साथ उस समाज की बदलती परिस्थिति से परिचित कराते हैं। निम्नमध्यवर्गीय जीवन के विविध पहलुओं का चित्रण करने के लिए भारती जी ने प्रेमकहानियों का सहारा लिया है। साथ ही इन उपन्यासों के माध्यम से उस काल के समाज का खोखलापन, दिखावटी प्रतिष्ठा को भी दिखाया है।

संदर्भ ग्रंथ

१. डा.लक्ष्मीनारायण गर्ग : "हिंदी कथा साहित्य में इतिहास",पृ.४७

२. डा.बालकृष्ण गुप्त : "हिंदी उपन्यास सामाजिक संदर्भ", पृ.७

३. डा.योगेंद्र बख्शी : "हिंदी तथा पंजाबी उपन्यास का तुलनात्मत अध्ययन", पृ.४५

४. डा.शिवकुमार शर्मा : "हिंदी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ", पृ.२५२

५. डा.हेमेंद्रकुमार पानेरी : "स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास : मूल्य-संक्रमण", पृ.२१५

६. डा.प्रतापनारायण टंडन : "हिंदी उपन्यास उद्‌भव और विकास", पृ.११३

७. डा.धर्मवीर भारती : "सूरज का सातवाँ घोडा", पृ.१०३

८. डा.धर्मवीर भारती : "गुनाहों का देवता", पृ.२५१

९. डा.धर्मवीर भारती : "सूरज का सातवाँ घोडा", पृ.५०

१०. डा.प्रभा वर्मा : "हिंदी उपन्यास सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया और स्वरूप", पृ.२९३

११. डा.धर्मवीर भारती : "गुनाहों का देवता", पृ.५१

१२. वही : वही, पृ.५२

१३. डा.धर्मवीर भारती : "सूरज का सातवाँ घोडा", पृ.७१

१४. डा.धर्मवीर भारती : "गुनाहों का देवता", पृ.३१२

१५. डा.धर्मवीर भारती : "सूरज का सातवाँ घोडा", पृ.४१

-o-o-o-o-